

विभाजन की त्रासदी और हिंदी सिनेमा (भाग-1)

विभाजन की त्रासदी पर हिंदी, उर्दू, पंजाबी, बांग्ला, अंग्रेजी और कई दूसरी भाषाओं में कविताएँ, कहानियाँ, उपन्यास और नाटक लिखे गए। कई भुक्तभोगियों ने संस्मरण लिखे, तो विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों ने विभाजन की त्रासदी की तरह-तरह से व्याख्या की और यह आज भी जारी है। लेकिन आश्चर्य की बात है कि विभाजन को लेकर कोई महत्वपूर्ण हिंदी फिल्म आज़ादी के लगभग 25 साल बाद तक नहीं बनी। 1973 में एम. एस. सथ्यु के निर्देशन में गरम हवा विभाजन पर बनी पहली गंभीर फिल्म थी। उसके लगभग पंद्रह साल बाद 1987 में गोविंद निहलानी ने दूरदर्शन के लिए भीष्म साहनी के उपन्यास 'तमस' पर इसी नाम से धारावाहिक का निर्माण किया, जो बाद में फिल्म के रूप में भी प्रदर्शित हुई। तमस का निर्माण एक ऐसे दौर में हुआ था जब भारत में एक बार फिर से सांप्रदायिक ताकतों का उभार होने लगा था। रामजन्म भूमि आंदोलन के नाम पर देश भर में सांप्रदायिक धुवीकरण की कोशिशें की जाने लगीं। थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद सांप्रदायिक दंगे होने लगे।

अयोध्या में बनी 400 साल पुरानी बाबरी मस्जिद को 6 दिसंबर 1992 को ध्वस्त कर दिया गया। इसके बाद सांप्रदायिक दंगों का लंबा सिलसिला शुरू हुआ। अब होने वाले दंगे आमतौर पर एकतरफ़ा होते थे और मुसलमानों को ही जान-माल का ज्यादा नुकसान झेलना पड़ता था। 1992-93 में मुंबई में और 2002 में गुजरात में हुए दंगे दरअसल मुसलमानों के विरुद्ध वैसे ही जनसंहार थे, जैसे 1984 में तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की हत्या के बाद दिल्ली और दूसरे शहरों में सिख समुदाय के विरुद्ध हुआ जनसंहार था। इन्हीं दशकों में पहले पंजाब में और बाद में कश्मीर में आतंकवाद के फैलाव ने स्थितियों को बद से बदतर बना दिया।

भारतीय सिनेमा आरंभ से ही मिलीजुली संस्कृति का वाहक रहा है। हिंदुस्तानी सिनेमा ने एक लंबे समय से इस उपमहाद्वीप के लोगों की सामूहिक चेतना को संबोधित करते हुए उनके मनबहलाव की ज़रूरतों को पूरा किया है। लोकप्रिय कला बने रहने के लिए यह ज़रूरी है कि सिनेमा उन संकीर्णताओं से ऊपर उठा रहे जिन्हें राजनीति से प्रेरित निहित स्वार्थ लोगों पर थोपते रहते हैं। सिनेमा को इन संकीर्णताओं से लड़ते हुए अपने अस्तित्व को बनाए रखना होता है और अपना विकास भी करना होता है। भारतीय सिनेमा ने इस लड़ाई को निरंतर जारी रखा है। यह समाज परिवर्तन की बुनियादी लड़ाई नहीं है लेकिन यह भारतीय समाज को टूटने से बचाने और उसे अपने सांस्कृतिक और सामाजिक विशिष्टताओं के साथ बनाए रखने की लड़ाई ज़रूर है। 1947 का विभाजन उसके इस अभियान पर पहला बड़ा आघात था और दूसरा आघात हुआ जब रामजन्मभूमि आंदोलन चलाया गया जिसकी परिणति छह दिसंबर 1992 के दिन बाबरी मस्जिद के विध्वंस में हुई और तीसरा आघात आरएसएस के राजनीतिक संगठन भारतीय जनता पार्टी का केंद्र की सत्ता पर लगातार तीन चुनाव जीतकर आसीन होना है। पिछले 12 सालों में वर्तमान सत्ता ने ऐसे फिल्मकारों को प्रोत्साहित किया जिन्होंने अपनी फिल्मों के द्वारा मुख्य रूप से मुस्लिम अल्पसंख्यकों के विरुद्ध सांप्रदायिक नफ़रत और घृणा को फैलाने का काम किया।

नब्बे के दशक में सांप्रदायिकता के उग्र होते जाने ने फिल्मकारों को इस बात के लिए प्रेरित किया कि वे विभाजन के त्रासदी अतीत को देखने, जाँचने और समझने का प्रयास करें। इस दौर में कई ऐसी फिल्में बनीं जिनमें या तो विभाजन और उस दौर के हालात को केंद्र में रखा गया था या फिर मौजूदा हालात से विभाजन के समय को जोड़कर देखा गया था। गरम हवा और तमस के बाद ट्रेन टू पाकिस्तान (1997), अर्थ 1947 (1999), हे राम! (2000), गदर : एक प्रेमकथा (2001), और पिंजर (2003), में मुख्य कथा विभाजन के इर्दगिर्द निर्मित हुई है, तो गांधी (1984), मम्मो (1994), नसीम (1995), जुबैदा (2001) में विभाजन संदर्भ के रूप में आता है। इसके अतिरिक्त ऐसी बहुत सी फिल्में इस दौर में बनीं जिनमें सांप्रदायिक दंगे,

आतंकवाद, कश्मीर, हिंदू-मुस्लिम और भारत-पाकिस्तान संबंधों को कथा का विषय बनाया गया था।



नलिम शेख, Carrying Home (घर को ले जाते हुए), 2001

विभाजन के आघात से उबरना आसान नहीं होता। हालाँकि अनुभवों को एक निश्चित आकार लेने में समय लगता है। उनको याद करना कोई समस्या नहीं है क्योंकि उन्हें भूला नहीं जा सकता। इसके विपरीत वे असंबद्ध और अबोधगम्य रूप में निरंतर दिमाग में छाये रहते हैं। विभाजन की हिंसा से बचे लोगों के बयानों से जहाँ एक ओर संवेदनशून्यता प्रकट होती है तो दूसरी ओर उन बातों पर यकीन करने का जी नहीं करता। क्या यह सब कुछ सच हो सकता है? अपनी अबोधगम्यता में ये अनुभव आघात की विशिष्टताओं को प्रकट करते हैं। इन बयानों में विभाजन की उथल-पुथल ऐसे रूप में सामने आती है मानो कुछ समय के लिए सभी लोग उन्मादग्रस्त हो गये हों। तर्क ने मनुष्य का साथ छोड़ दिया हो और वह हिंसक, विचारशून्य और वहशी बन गए हों।

गरम हवा वित्त निगम द्वारा प्रायोजित और अनुदान प्राप्त फ़िल्म थी जिसे आरंभ में सेंसर बोर्ड से प्रमाणपत्र हासिल करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और फ़िल्म मुश्किल से 1973 में प्रदर्शित हो पायी। आखिर में फ़िल्म को उस वर्ष की सर्वश्रेष्ठ फ़िल्म का राष्ट्रपति स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। गरम हवा समानांतर सिनेमा की एक महत्वपूर्ण फ़िल्म मानी गई। विभाजन पर बनी अन्य फ़िल्मों से तुलना करने पर गरम हवा अधिक सचेत और औपचारिक मेलोड्रामेटिक मोड की फ़िल्म है, जो एकता और अलगाव के बीच के टकराव में बीच-बचाव करती है। जब सलीम मिर्ज़ा के बड़े भाई हलीम मिर्ज़ा अपने परिवार के साथ आगरा छोड़कर पाकिस्तान जा रहे होते हैं तो कैमरा दरवाजे पर लगे ताले के क्लोजअप से शुरू होता है, फिर धीरे-धीरे स्टेशन से बाहर निकलती ट्रेन की आवाज़ और उसके बाद डचोढ़ी में बैठी सलीम मिर्ज़ा की बेटी अमीना अपने होने वाले पति कासिम के लिए स्वेटर बुनती हुई दिखाई देती है। उसे अब भी उम्मीद बनी हुई है लेकिन जब कासिम भी पाकिस्तान चला जाता है तो वह टूट सी जाती है और उसी डचोढ़ी में वह उदास बैठी दिखाई देती है। तेजी से गूँजती ट्रेन की सीटी की आवाज़ सुनाई देती है और क्लोजअप में उसका स्तब्ध चेहरा दिखाई देता है। इस समय, जब ट्रेन के स्टेशन से बाहर निकलने की आवाज़ सुनाई देती है, तो कैमरा और धीमी रफ़्तार से अमीना के चेहरे की तरफ़ बढ़ने लगता है और उसकी खाली-खाली आँखों के बिल्कुल नज़दीक जाकर ठहर जाता है। जब-जब सलीम मिर्ज़ा स्टेशन से लौटते हैं तो उनका उदास चेहरा तांगे के शेड के सम्मुख दिखाई देता है। बलराज साहनी जिन्होंने सलीम मिर्ज़ा की भूमिका निभाई है, स्वयं विभाजन से विस्थापित व्यक्ति थे। उनसे बेहतर ढंग से कौन समझ सकता है कि विभाजन की पीड़ा क्या होती है, अपनी ज़मीन से उखड़ने का क्या मतलब होता है। यह ऐसी वेदना थी, जिसे न रोककर और न ही चीखकर व्यक्त किया जा सकता था। जिस वेदना भरी आत्मविच्छिन्नता से मिर्ज़ा सलीम को गुजरना पड़ता है, बलराज साहनी उसे जीवंत कर देते हैं। मिर्ज़ा सलीम के माध्यम से बलराज साहनी उस पात्र को ही नहीं जीते, स्वयं अपने अतीत को भी जी रहे होते हैं।

आजादी के पचीस साल बाद निर्मित गरम हवा स्वाभाविक राष्ट्रवादी लोकाचार (इथॉस) की वैधता के सामूहिक पुनर्मूल्यांकन में सहभागी बनती है। गरम हवा हालाँकि विभाजन के बाद के भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यकों की दुर्दशा को चित्रित करती है इसके बावजूद फ़िल्म इस बात पर बल भी देती है कि देश को संकीर्णतावादी विभाजनों से ऊपर उठकर

आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक न्याय को हासिल करने की दिशा में आगे बढ़ना चाहिए।



परितोष सेन, रेफ़्यूजी, 1946

विभाजन के चार दशक बाद, सरकारी टेलीविजन चैनल 'दूरदर्शन' पर पाँच घंटे लंबा लघु धारावाहिक तमस का प्रदर्शन हुआ जिसने एक बार फिर से विभाजन से जुड़े जख्मों को घर-घर तक पहुँचा दिया। भीष्म साहनी ने अपना यह उपन्यास 1971 में लिखना शुरू किया था, जब गृहयुद्ध के कारण बांग्लादेश का जन्म हुआ और दक्षिण एशिया में एक बार फिर भू-राजनीतिक विभाजन हुआ था। उपन्यास को साहित्य अकादमी अवार्ड से नवाज़ा गया था। उपन्यास में विभाजन से जुड़ी मारकाट की भयावहता को शक्तिशाली ढंग से संप्रेषित किया गया है, लेकिन लेखक अपने को निर्लिप्त रखने और विश्लेषण करने में कामयाब रहा है। तमस भीष्म साहनी के इसी नाम के उपन्यास पर आधारित है लेकिन इसमें उन्हीं की दो कहानियों 'सरदारनी' और 'ज़हर बख़्श' को भी शामिल किया गया है। भीष्म साहनी ने इस बात का उत्तर देते हुए कि तमस क्यों और अभी क्यों, कहा कि धारावाहिक बनाने वालों का उद्देश्य पुराने जख्मों को कुरेदना नहीं है और न ही सुषुप्त विद्वेष को जगाना है। न ही विभाजन के समय हुई मारकाट के लिए किसी विशेष समुदाय को ज़िम्मेदार ठहराना है। इसके विपरीत, विभाजन की ओर ले जाने वाली सांप्रदायिक ताकतों को, जो अब भी समकालीन भारत में सक्रिय हैं, सामने लाना और उनकी करतूतों के प्रति लोगों को सावधान करना है। भीष्म साहनी और गोविंद निहलानी दोनों का विभाजन से सीधा संबंध था। भीष्म साहनी विभाजन से पहले रावलपिंडी में रहते थे और गोविंद निहलानी ने लिखा था, 'भय, आतंक

धारावाहिक में नत्थू और उसके जैसे साधारण लोग जो विभाजन के बवंडर के बीच फँस गए हैं, उनका चित्रण बहुत विस्तार से किया गया है। वे ऐसी अभागी कठपुतलियाँ हैं, जिनके कार्य स्वयं उनकी इच्छा से नहीं किए गए हैं। यहाँ विभाजन प्राकृतिक आपदा जैसी ताक़त के साथ तबाही मचाता है। प्रचलित एकता और साझापन जो आम आदमी के रोज़मर्रा के जीवन की पहचान है, के बावजूद अव्यवस्था फैल जाती है। विभाजन और राष्ट्र का जन्म दोनों अपरिहार्य के रूप में प्रस्तुत होते हैं। 'बाँटो और राज करो' की ब्रिटिश नीति महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर आश्रित विशाल दस्तावेज़ीकरण और व्याख्याओं का विषय रही है। विभिन्न धार्मिक समुदायों की चिंताओं के साथ अनेक तरीकों से खिलवाड़ करना और उनके बीच अविश्वास भड़काना इस नीति का मुख्य आधार रहा है। हालाँकि सांप्रदायिकता और संभावित बँटवारे को सिर्फ़ ब्रिटिश चालों से नहीं समझा जा सकता। तमस में जो रणनीति अपनाई गई है, वह बहुत सीधी है। असहाय जनता और राजनीतिज्ञों, धार्मिक नेताओं और संपत्तिशाली वर्गों, बिचौलिए जिनके पास इतिहास को आकार देने की ताक़त है, के बीच तीखा अंतर किया गया है। जिस व्यक्ति ने सुअर को मारा है और अनजाने में दंगे भड़काता है, दरअसल कुटिल षड्यंत्रकारियों के हाथ की कठपुतली के रूप में दर्शाया गया है और जो, जैसे-जैसे दहशत फैलती जाती है, किनारे खड़ा देखता रहता है। नत्थू को दोषमुक्त करने में, तमस आम आदमी को हर तरह की ज़िम्मेदारियों से मुक्त कर देती है। इस बीच, ताक़तवरों को निर्दयी, अपने एजेंडे को चालाकी से आगे बढ़ाने वाले के रूप में चित्रित किया गया है: वे सतर्कतापूर्वक देखते रहते हैं, अपनों के बीच तक्रार करते रहते हैं और आग में घी डालते रहते हैं। जब दंगे शांत हो जाते हैं, तो व्यापारी और भूस्वामी व्यापार के अवसरों और लोगों के बड़े पैमाने पर भाग खड़े होने से ज़मीन-जायदाद के मूल्य को लेकर विचार-विमर्श करने लगते हैं। वे लाशों पर मंडराने वाले गिद्धों से भिन्न नहीं हैं।



अर्पिता सिंह, Leaping Bridge (पुल लाँघते हुए), 2015

तमस विस्तार से इंसानी मूल्यों की रक्षा का प्रयत्न करता है जो कि लोगों को एक दूसरे से जोड़ता है। राष्ट्रवादी इतिहास लेखन साहस, करुणा और आपसी भाईचारे का समर्थन करता है। यह धारावाहिक भी शौर्य की घटनाओं को नाटकीय रूप में प्रस्तुत करता है जब लोग अपनी जान जोखिम में डालकर दूसरे धर्म के लोगों की जान बचाने की कोशिश करते हैं। लेकिन घृणा और नफ़रत के भी ऐसे दृश्य हैं जिसे देखकर मानवता शर्मसार हो जाती है। इतनी नफ़रत, विध्वंसात्मक ऊर्जा सामान्य अपेक्षाओं को मिथ्या साबित कर देती है। यह मानवीय शिष्टाचार के विरुद्ध नज़र आता है। सामान्य दिखने वाले, एक दूसरे की फ़िक्र करने वाले कैसे अचानक पिशाच बन जाते हैं? धारावाहिक ऐसे सवाल उठाकर हमें जनता के बारे में यह समझ देता है कि लोग अनिवार्यतः समझदार और शांतिप्रिय होते हैं। वे सहअस्तित्व और साझेपन की लंबी परंपरा के द्वारा एक राष्ट्रीय समुदाय की पहचान देते हैं। इस दृष्टि से राष्ट्रीयता पहले से हमें बाँधे हुए है, एक पूर्वनियत सत्ता है, पहले से विद्यमान गर्भस्थ शिशु है जो अंग्रेज़ों के जाने के साथ ही पैदा होने का इंतज़ार कर रहा है। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि धारावाहिक अपनी नाटकीय ऊर्जा नत्थू के अजन्मे बच्चे के आसन्न भाग्य से जोड़ता है और इस बच्चे का शरणार्थी शिविर में पैदा होना एक संप्रभु राज्य का जन्म लेना है।

हरनाम सिंह और बंतो नत्थू और कर्मों को सैयदपुर गाँव ले जाते हैं जहाँ उनकी बेटी जसबीर रहती है। वहाँ वे एक गुरुद्वारे में शरण लेते हैं। वहाँ वे भजन-कीर्तन सुनते हुए अपनी रात गुज़ारते हैं। जिस समय गुरुद्वारे से जसबीर कौर दूसरी औरतों का नेतृत्व करते हुए कुएँ में खुदकुशी करने के लिए ले जाती है, वह उसके साहस और दृढ़निश्चय को उद्घाटित करता है। दोनों समुदायों के बीच समझौते की बातचीत नाकामयाब हो जाती है। छोटे ग्रंथी को बलवाइयों से बातचीत के लिए भेजा जाता है, लेकिन ग्रंथी और उसके साथ गया नत्थू मारे जाते हैं। सिखों और मुसलमानों के बीच का यह पूरा प्रसंग मध्ययुगीन युद्ध की याद दिलाता है। खुद भीष्म साहनी ने गुरुद्वारे में मौजूद सिखों की मनःस्थिति को मध्ययुग की ही पुनरावृत्ति कहा है। गुरुद्वारे पर हमला करने के लिए आने वाले मुस्लिम दंगाइयों को 'तुर्क' आ गये हैं' के रूप में संबोधित किया जाता है। जिस तरह मुगलों के समय कुछ सिख गुरुओं को युद्ध करना पड़ा था, ठीक वही मानसिकता सिखों की भी बन जाती है और वे मुसलमान को मुसलमान के रूप में नहीं बल्कि तुर्क के रूप में देखने लगते हैं और खुद को उन सैनिकों की तरह जिन्होंने सिख गुरुओं की तरफ से युद्ध में भाग लिया था। जसबीर कौर भी उसी मानसिकता से प्रेरित होकर सामूहिक आत्महत्या की ओर बढ़ती है। मुसलमान भी कुछ अलग ढंग से नहीं सोचते। तमस के स्त्री चरित्रों में दो अंतर्विरोधी विशिष्टताओं को चित्रित किया गया है।

एक ओर अपनी जान की बाजी लगाने के साहस के कारण उन्हें वीर नायिका की तरह पेश किया गया है, तो दूसरी ओर वे 'अविवेकपूर्ण धार्मिक उन्माद' द्वारा संचालित होती हैं। क्या कोई औरत वास्तव में अंतिम उपाय के तौर पर ज़िंदगी की बजाय मृत्यु को गले लगा लेगी, भले ही ज़िंदगी उतनी सम्मानजनक न हो। हरनाम सिंह भी बार-बार अपनी पत्नी को कहता है कि अगर दंगाई आएँगे तो वह पहले उसे मार देगा और फिर वह स्वयं मर जाएगा। इस पूरे मामले में स्त्री या तो उत्पीड़िता के रूप में सामने आती है या अपनी इज्जत की रक्षा करने वाली शहीद की तरह। (क्रमशः)

जवरीमल्ल पारख

सिनेमा पर नियमित लिखने वाले जाने-माने लेखक